THE HINDU

Date:05-12-22

Poor soil management will erode food security

Soil degradation can have irreparable consequences on human and ecosystem health, which cannot be ignored

Konda Reddy Chavva, [Officer-in-Charge, Food and Agriculture Organization of the United Nations (FAO) Representation in India]

Healthy soils are essential for our survival. They support healthy plant growth to enhance both our nutrition and water percolation to maintain groundwater levels. Soils help to regulate the planet's climate by storing carbon and are the second largest carbon sink after the oceans. They help maintain a landscape that is more resilient to the impacts of droughts and floods. As soil is the basis of food systems, it is no surprise that soil health is critical for healthy food production.

World Soil Day (WSD) 2022, annually observed on December 5, aligns with this. WSD 2022, with its guiding theme, 'Soils: Where food begins', is a means to raise awareness on the importance of maintaining healthy soils, ecosystems and human well-being by addressing the growing challenges in soil management, encouraging societies to improve soil health, and advocating the sustainable management of soil.

Degradation and its consequences

Today, nutrient loss and pollution significantly threaten soils, and thereby undermine nutrition and food security globally. The main drivers contributing to soil degradation are industrial activities, mining, waste treatment, agriculture, fossil fuel extraction and processing and transport emissions. The reasons behind soil nutrient loss range from soil erosion, runoff, leaching and the burning of crop residues. Soil degradation in some form or another affects around 29% of India's total land area. This in turn threatens agricultural productivity, in-situ biodiversity conservation, water quality and the socio-economic well-being of land dependent communities.

Nearly 3.7 million hectares suffer from nutrient loss in soil (depletion of soil organic matter, or SOM). Further, excessive use of fertilizers and pesticides, and irrigation with contaminated wastewater are also polluting soils. Impacts of soil degradation are far reaching and can have irreparable consequences on human and ecosystem health.

India's conservation strategy

The Government of India is implementing a five-pronged strategy for soil conservation. This includes making soil chemical-free, saving soil biodiversity, enhancing SOM, maintaining soil moisture, mitigating soil degradation and preventing soil erosion. Earlier, farmers lacked information relating to soil type, soil

deficiency and soil moisture content. To address these issues, the Government of India launched the Soil Health Card (SHC) scheme in 2015. The SHC is used to assess the current status of soil health, and when used over time, to determine changes in soil health. The SHC displays soil health indicators and associated descriptive terms, which guide farmers to make necessary soil amendments.

Other pertinent initiatives include the Pradhan Mantri Krishi Sinchayee Yojana, to prevent soil erosion, regeneration of natural vegetation, rainwater harvesting and recharging of the groundwater table.

In addition, the National Mission for Sustainable Agriculture (NMSA) has schemes promoting traditional indigenous practices such as organic farming and natural farming, thereby reducing dependency on chemicals and other agri-inputs, and decreasing the monetary burden on smallholder farmers.

The Food and Agriculture Organization of the United Nations (FAO) undertakes multiple activities to support the Government of India's efforts in soil conservation towards fostering sustainable agrifood systems. The FAO is collaborating with the National Rainfed Area Authority and the Ministry of Agriculture and Farmers' Welfare (MoA&FW) to develop forecasting tools using data analytics that will aid vulnerable farmers in making informed decisions on crop choices, particularly in rainfed areas.

Working with target States

The FAO, in association with the Ministry of Rural Development, supports the Deen Dayal Antyodaya Yojana-National Rural Livelihoods Mission's (DAY-NRLM) Community Resource Persons to increase their capacities towards supporting on-farm livelihoods for the adoption of sustainable and resilient practices, organic certification and agri-nutri-gardens. The FAO works in eight target States, namely, Madhya Pradesh, Mizoram, Odisha, Rajasthan, Uttarakhand, Chhattisgarh, Haryana and Punjab, for boosting crop diversification and landscape-level planning. In Andhra Pradesh, the FAO is partnering with the State government and the Indian Council of Agricultural Research (ICAR) to support farmers in sustainable transitions to agro-ecological approaches and organic farming.

There is a need to strengthen communication channels between academia, policymakers and society for the identification, management and restoration of degraded soils, as well as in the adoption of anticipatory measures. These will facilitate the dissemination of timely and evidence-based information to all relevant stakeholders. Greater cooperation and partnerships are central to ensure the availability of knowledge, sharing of successful practices, and universal access to clean and sustainable technologies, leaving no one behind. As consumers and citizens, we can contribute by planting trees to protect topsoil, developing and maintaining home/kitchen gardens, and consuming foods that are mainly locally sourced and seasonal.

दैनिक जागरण

Date:05-12-22

राष्ट्रीय चुनौती बना छल-बल से मतांतरण

हृदयनारायण दीक्षित, (लेखक उत्तर प्रदेश विधानसभा के पूर्व अध्यक्ष हैं)

अवैध मतांतरण राष्ट्रीय चुनौती है। ईसाई-इस्लामी समूह लंबे समय से अवैध मतांतरण में संलग्न हैं। वे सारी दुनिया को अपने पंथ-मजहब में मतांतरित करने के लिए तमाम अवैध साधनों का इस्तेमाल कर रहे हैं। अपनी आस्था, विवेक और अनुभूति में जीना प्रत्येक मनुष्य का अधिकार है, लेकिन यहां अवैध मतांतरण के लिए छल, बल, भय और प्रलोभन सहित अनेक नाजायज तरीके अपनाए जा रहे हैं। यह मानवता के विरुद्ध असाधारण अपराध है। और राष्ट्रीय अस्मिता के विरुद्ध युद्ध भी है। मतांतरण से व्यक्ति अपना मूल धर्म ही नहीं छोड़ता, बल्कि उसकी देव आस्थाएं भी बदल जाती हैं। पूर्वज बदल जाते हैं। वह अपनी संस्कृति के प्रति स्वाभिमानी नहीं रह जाता। वह नए पंथ-मजहब के प्रभाव में अपने पूर्वजों पर भी गर्व नहीं करता। उसकी भू-सांस्कृतिक निष्ठा बदल जाती है। भू-सांस्कृतिक निष्ठा ही भारतीय राष्ट्र का मूल तत्व है। इसलिए मतांतरण राष्ट्रांतरण भी है। इस्लाम और ईसाइयत की आस्था सारी दुनिया को इस्लामी-ईसाई बनाना है। ईसाई मिशनरियां अस्पताल, स्कूल जैसी सेवाएं देकर गरीबों-बीमारों को ठगती हैं। वे हिंदू देवी-देवताओं का अपमान सिखाती हैं। गांधी जी ने हरिजन (18-07-1936) में लिखा था, "आप पुरस्कार के रूप में चाहते हैं कि आपके मरीज ईसाई बन जाएं।" उन्होंने 1937 में फिर लिखा, "मिशनरी सामाजिक कार्य को निष्काम भाव से नहीं करते।" स्कूल, अस्पताल बहाना हैं। मकसद मतांतरण है। इसी तरह तमाम इस्लामी संगठन भी अवैध मतांतरण में संलग्न हैं। दोनों की क्रूर कारगुजारियों का लंबा इतिहास है।

औद्योगिक समूह वस्तुओं के अपने ब्रांड का प्रचार करते हैं। अपने ब्रांड को उपयोगी बताते हैं, लेकिन धर्म, पंथ, मजहब उपभोक्ता सामग्री नहीं होते। इसी तरह पंथिक समूह राजनीतिक दल भी नहीं होते। राजनीतिक समूह अपने दल को लोक कल्याणकारी बताते हैं और दूसरे दलों को भ्रष्ट। यही काम पंथ, मजहब के प्रचारक करते हैं। वे अपने पंथ को सही और दूसरे पंथ को गलत बताते हैं। मतांतरण में जुटी शक्तियां भारतीय संविधान के अनुच्छेद 25 की आड़ में कथित पंथ प्रचार करती हैं। संविधान के उक्त प्रविधान में कहा गया है, "सभी व्यक्तियों को अंतःकरण की स्वतंत्रता और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने का सामान हक होगा।" इसे धर्म की स्वतंत्रता और प्रचार का अधिकार कहा गया है। यहां अंतर्विरोध हैं। 'अंतःकरण की स्वतंत्रता' में धर्म प्रचार बाधक है। मतांतरण के मकसद खतरनाक हैं। संविधान सभा में अनुच्छेद 25 पर काफी बहस हुई थी। संविधान के मूल पाठ में धर्म की जगह रिलीजन शब्द प्रयोग हुआ है। रिलीजन और धर्म में मौलिक अंतर है। धर्म भारत के लोगों की जीवनशैली है। सभा में तजम्मुल हुसैन ने कहा था, "मैं आपसे मेरे अपने तरीके से मुक्ति पाने का आग्रह क्यों करूं? आप भी मुझसे ऐसा क्यों कहें?" सही बात है। जीवन का लक्ष्य या मुक्ति के उपाय और साधन एक पंथिक समूह द्वारा दूसरे पंथिक समूह पर नहीं थोपे जा सकते। ऐसे प्रयास सभ्य समाज पर कलंक हैं। प्रो. केटी शाह ने कहा कि "यह अनुचित प्रभाव डालना हुआ। ऐसे बहुत उदाहरण है जहां अनुचित धर्म परिवर्तन कराए गए हैं।" लोकनाथ मिश्र ने पंथ प्रचार के अधिकार को गुलामी का दस्तावेज बताया था। उन्होंने भारत विभाजन को मतांतरण का परिणाम बताया।

वास्तव में मतांतरण से जनसंख्या के चरित्र में बदलाव आते हैं। के संथानम ने ईसाई मिशनरियों द्वारा कराए जा रहे मतांतरण पर कहा था कि "राज्य को अनुचित प्रभाव डाल कर मतांतरण करने वालों पर कार्रवाई का पूरा अधिकार है।" संविधान सभा का बहुमत पंथ-धर्म प्रचार के वैधानिक अधिकार के विरुद्ध था। इसे देखकर केएम मुंशी ने कहा, "ईसाई समुदाय ने इस शब्द के रखने पर बहुत जोर दिया है। परिणाम कुछ भी हों, हमने जो समझौते किए हैं, हमें उन्हें मानना चाहिए।" संविधान सभा में मुंशी ने जिन समझौतों का उल्लेख किया था, आखिरकार उन समझौतों के पक्षकार कौन लोग थे? क्या तत्कालीन सरकार एक पक्षकार थी? तो दूसरा पक्ष कौन था? क्या दूसरा पक्ष संप्रभु राष्ट्र राज्य से ज्यादा प्रभावी था? अब समय आ गया है कि इस रहस्य से पर्दा उठना चाहिए। अनुच्छेद 25 पर भी नए सिरे से विचार की आवश्यकता है। इससे राष्ट्रीय क्षति हुई है। पंथ प्रचार के अधिकार से हुए लाभ-हानि पर भी विचार करने का यही सही अवसर है। पंथ प्रचार के नाम पर पंथिक, मजहबी अलगाववाद बढ़ाने की इजाजत किसी को नहीं दी जा सकती।

मध्य प्रदेश में ईसाई मतांतरणों की बाढ़ से पीड़ित तत्कालीन मुख्यमंत्री रवि शंकर शुक्ल ने न्यायमूर्ति भवानी शंकर की अध्यक्षता में एक जांच समिति बनाई थी। उस समिति ने मतांतरण के उद्देश्य से भारत आए विदेशी तत्वों को बाहर करने की सिफारिश की थी। न्यायमूर्ति एमवी रेगे जांच समिति (1982) ने भी ईसाई मतांतरणों को दंगों का कारण बताया था। वेणु गोपाल आयोग ने तो मतांतरण रोकने के लिए कानून बनाने की सिफारिश की थी। मतांतरण का प्रश्न पहली लोकसभा में ही उठा था। देश के 12 राज्यों ने मतांतरण रोकने पर कानून बनाए हैं। वे राज्य उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, झारखंड, हिमाचल प्रदेश, गुजरात, अरुणाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, ओडिशा, कर्नाटक, हरियाणा एवं तमिलनाडु हैं। हाल में सर्वोच्च न्यायपीठ में इन कानूनों के विरुद्ध याचिका भी दाखिल हुई है। याचिका में मतांतरण विरोधी कानूनों को समाप्त करने की मांग की गई है। कानून विधि सम्मत हैं। संविधान (अनुच्छेद 25-2) का पुनर्पाठ आवश्यक है कि "इस अनुच्छेद की कोई बात विद्यमान विधि के प्रवर्तन पर कोई प्रभाव नहीं डालेगी और धार्मिक आचरण से संबद्ध किसी आर्थिक, वित्तीय, राजनीतिक या अन्य क्रियाकलापों का विनियमन या निर्बंधन करने वाली विधि बनाने से राज्य को नहीं रोकेगी।" राज्य विधानसभाओं ने अपनी विधायी क्षमता के आधार पर ही मतांतरण विरोधी कानून बनाए हैं। ये कानून भय, लोभ, छल से होने वाले अवैध मतांतरण रोकने के लिए ही बनाए गए हैं। वर्तमान परिस्थितियों के अनुरूप इन्हें प्रभावी रूप से लागू किए जाने की आवश्यकता है। देश भय, लोभ, छल, बल आधारित मतांतरण की क्षति बर्दाश्त नहीं कर सकता। समय की मांग है कि मतांतरण का अपराध बंद होना चाहिए।

Date:05-12-22

अपराध है नियुक्तियों में अनावश्यक देरी

जगमोहन सिंह राजपूत, (लेखक शिक्षा, सामाजिक सद्भाव एवं पंथिक समरसता के क्षेत्र में कार्यरत हैं)

केंद्र सरकार ने एक चुनाव आयुक्त की नियुक्ति की। समाचार छपा। लोगों ने मान लिया कि एक सामान्य घटना है, लेकिन व्यवस्था के छिद्रान्वेषण में निपुण किसी नागरिक ने इसमें असमान्यता ढूंढ़ ली और सर्वोच्च न्यायालय में वाद दायर किया कि इतनी तेजी क्यों? न्यायालयों में निर्णय की मंथर गति सर्वविदित है, लेकिन चुनाव आयोग नियुक्ति प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय ने शिकायतकर्ता की अर्जी को ध्यान से सुना और तय किया कि वह इस संबंध में हर

संशय को दूर करेगा। अपने आप में संभवत: यह एकमात्र घटना होगी जब भारत का सर्वोच्च न्यायालय किसी फाइल की तेज गति के कारण सतर्क हो गया हो और इसका कारण जानना चाहे। यह सर्वस्वीकार्य है कि भारत का सर्वोच्च न्यायालय हर नागरिक से सर्वोच्च सम्मान का अधिकारी है और इस लोकतांत्रिक देश में यह सम्मान उसे मिलता है। उसे तो ऐसी किसी भी घटना का स्वतः संज्ञान लेने का अधिकार है जिसमें उसे लगे कि किसी के भी साथ अन्याय हो रहा है। इसमें संविधान के साथ हो रहा अन्याय भी शामिल है। कितना अच्छा होता कि सर्वोच्च न्यायालय पिछले कुछ महीनों से संविधान के साथ हो रहे एक घोर अन्याय का स्वतः संज्ञान लेता। क्या किसी को ऐसा कोई उदाहरण ज्ञात है कि चुनी हुई सरकार का मंत्री आपराधिक आरोप में न्यायालय द्वारा जेल भेजा जाए, लेकिन वह मंत्री पद पर बना रहे? पूर्व में महाराष्ट्र और वर्तमान में दिल्ली के मंत्रियों के साथ ऐसा हुआ है। मंत्री पद पर हुई नियुक्ति क्या अन्य हर प्रकार की नियुक्ति से अलग है? दिल्ली के मंत्री को लेकर जो स्थिति बनी है, क्या वह एक जीवंत संविधान के प्रति घोर लांछन की स्थिति निर्मित नहीं करती है? देश का वह प्रखर बौद्धिक तथा सेवानिवृत्त नौकरशाहों का वह वर्ग भी ऐसे महत्वपूर्ण मुद्दों पर चुप्पी साध लेता है, जो सामान्यत: प्रधानमंत्री को सामूहिक पत्र लिखने और देश की नकारात्मक छवि निर्मित करनेवाले लेख विदेशी अखबारों में लिखने के लिए सदा तैयार रहता है।

भारत के मुख्य चुनाव आयुक्त और चुनाव आयुक्त के पद अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। देश का ध्यान उनकी तरफ जाता है। जब एक नियुक्ति को लेकर सर्वोच्च न्यायालय का ध्यान खींचा गया है, तब यह उचित ही होगा कि उन हजारों-लाखों युवाओं की ओर भी ध्यान दिया जाए, जो अपनी शिक्षा प्राप्त कर वर्षों तक नियुक्ति की प्रतीक्षा करते रहते हैं और इन प्रतीक्षा-वर्षों में हर प्रकार के संताप सहन करते हैं। पिछली सदी के छठे और सातवें दशक तक सरकारी संस्थान तथा केंद्रीय और राज्यों के लोक सेवा आयोग अपनी निष्पक्षता के लिए जाने जाते थे। पिछले दो-तीन दशकों से उनकी इस साख में लगातार गिरावट आई है। हर परीक्षार्थी भयभीत रहता है कि इस बार भी प्रश्नपत्र लीक न हो जाए। विज्ञापन के तीन-चार वर्षों तक नियुक्ति प्रक्रिया का संपन्न न हो पाना अब किसी को आश्चर्यचकित नहीं करता है। कितना अच्छा होता यदि सर्वोच्च न्यायालय इसका स्वत: संज्ञान लेकर इन कुप्रवृत्तियों को रोकने के उपाय देश को बताता और उसे लागू कराता। चूंकि अब न्यायपालिका विधायिका में हुई नियुक्तियों में तेजी पर चिंतित हो रही है तो उसे स्कूलों और विश्वविद्यालयों में शिक्षकों की नियुक्तियों में हो रही घनघोर देरी के लिए भी स्वतः संज्ञान लेकर आदेश पारित करना चाहिए। विश्वविद्यालयों में प्राध्यापकों के दशकों तक पद रिक्त रहने से देश की बौद्धिक संपदा को हो रही अकूत हानि से माननीय न्यायालय अपरिचित तो नहीं होगा। दूसरी ओर केरल में हर मंत्री को बीस से अधिक सहायक सरकारी खर्चे पर नियुक्त करने का अधिकार है, जो दो वर्ष बाद पेंशन के लिए अधिकृत हो जाते हैं। क्या यह स्वतः संज्ञान लेने लायक प्रकरण नहीं है?

आज विश्व ज्ञान समाज में प्रवेश कर चुका है। प्रत्येक देश जानता है कि उसका विकास और प्रगति सीधे तौर पर उसकी अपनी बौद्धिक संपदा पर निर्भर है। भारत अपने उच्च शिक्षा प्राप्त और शोध में प्रशिक्षित लाखों युवाओं के साथ इतना बड़ा अन्याय कैसे कर सकता है? 24-25 वर्ष के युवा के अपने सपने होते हैं। परिवार की उससे कितनी ही अपेक्षाएं होती हैं। उसके सामने परिवार द्वारा उसे शिक्षित करने में उठाए गए कष्टों का बोझ भी होता है। अब ऐसे युवा की मनोदशा की कल्पना करना कठिन नहीं होना चाहिए। उसकी तुलना में उस युवा को लीजिए जिसने अपनी शोध उपाधि प्राप्त करने के तुरंत बाद नियमित नियुक्ति पा ली हो, करियर की अनिश्चितता से मुक्त हो गया हो, अपनी प्रोन्नति के बारे में सोचना प्रारंभ कर दिया हो और उसके लिए अपने योगदान की गुणवत्ता बढ़ाने में निष्ठापूर्वक लग गया हो। उसके लिए अगले आठ साल में एसोसिएट प्रोफेसर तथा तीन साल बाद प्रोफेसर बनाने का प्रविधान है। यह इसीलिए किया गया है कि संस्थाओं में सशक्त कार्य संस्कृति बने, शोध और नवाचार के लिए एक कर्मठ और निष्ठावान युवावर्ग देश के हर

उच्च शिक्षा संस्थान में कार्यरत हो। क्या हम नियमों, उपनियमों और कार्य संस्कृति के समक्ष इतना निरीह हो गए हैं कि दो-दो दशकों तक विशिष्ठ ज्ञान केंद्रों को भी ऐसे तदर्थ नियुक्त युवाओं के हाथ में छोड़ दें, जो चौबीसों घंटे अपने कल की चिंता में तनाव ग्रस्त बने रहने को बाध्य हों? एक व्यक्ति की नियुक्ति कितने ही लोगों पर प्रभाव डालती है। उसमें अनावश्यक देरी अक्षम्य अपराध माना जाना चाहिए। एक अध्यापक की नियुक्ति पीढ़ियों पर प्रभाव डालती है। सतर्क व्यवस्था तो वही होगी जो पद रिक्त होने के पहले ही नियुक्ति की प्रक्रिया पूरी कर ले। पद चाहे भारत के मुख्य न्यायाधीश का हो, चुनाव आयुक्त का हो या सरकारी स्कूल के अध्यापक का।

जनसत्ता

Date:05-12-22

बढ़ती आबादी, गहराता खाद्य संकट

रवि शंकर

दुनिया की आबादी आठ अरब को पार कर चुकी है। मात्र तेईस साल की अवधि में दुनिया की आबादी दो अरब बढ़ गई। आने वाले दशकों में क्षेत्रीय असमानताओं के साथ जनसंख्या बढ़ती रहेगी। संयुक्त राष्ट्र के मुताबिक 2030 तक यह आबादी साढ़े आठ अरब, 2050 तक 9.7 अरब और 2100 तक 10.4 अरब तक पहुंच सकती है। आबादी के मामले में भारत अगले साल तक चीन को पीछे छोड़ देगा। वह पहले नंबर का सबसे बड़ी आबादी वाला देश हो जाएगा। भारत की जनसंख्या अभी 1.04 फीसद की सालाना दर से बढ़ रही है। अहम सवाल यह है कि जिस रफ्तार से जनसंख्या बढ़ रही है, इतनी बड़ी जनसंख्या का आने वाले समय में पेट कैसे भरा जाएगा। क्योंकि जलवायु परिवर्तन न सिर्फ आजीविका, जल आपूर्ति और मानव स्वास्थ्य के लिए खतरा, बल्कि खाद्य सुरक्षा के लिए भी चुनौती खड़ी कर रहा है। दुनिया के अधिकांश देश आज जिन चुनौतियों का सामना कर रहे हैं, उनमें खाद्य सुरक्षा सबसे बड़ी चुनौती है।

आज जिस तरह विश्व की आबादी बढ़ रही है, उसी हिसाब से प्राकृतिक संसाधनों पर भी स्पष्ट रूप से दबाव पड़ रहा है। आज पूरी दुनिया के लिए बढ़ती आबादी और सिकुड़ते संसाधन एक अभिशाप हैं, क्योंकि जनसंख्या के अनुपात में संसाधन सीमित हैं। यही वजह है कि करीब आठ अरब की आबादी का बोझ ढोती यह पृथ्वी जनसंख्या से पैदा हुई अनेक समस्याओं के निदान की बाट जोह रही है। पूरी दुनिया की आबादी में अकेले एशिया की इकसठ फीसद हिस्सेदारी है। यही भारत को दुनिया की महाशक्ति बनने में सबसे बड़ी बाधा है। फिलहाल भारत की जनसंख्या विश्व जनसंख्या का अठारह फीसद है। भूभाग के लिहाज के हमारे पास 2.5 फीसद जमीन और चार फीसद जल संसाधन है। ऐसे में तेजी से बढ़ती जनसंख्या देश की सामाजिक-आर्थिक समस्याओं की जननी बन कर देश के सामने खतरे की घंटी बन सकती है। आज जनसंख्या वृद्धि देश की हर समस्या का मूल कारण बनती जा रही है। गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी, अशिक्षा, स्वास्थ्य सेवाएं, अपराध, स्वच्छ जल की कमी आदि के पीछे भी जनसंख्या वृद्धि एक बड़ा कारण है। इतना ही नहीं, देश में जमीन के कुल साठ फीसद हिस्से पर खेती होने के बावजूद करीब बीस करोड़ लोग भुखमरी का शिकार हैं। साफ है, जनसंख्या विस्फोट से संसाधनों की अपर्याप्तता के कारण उत्पन्न हुई समस्याओं का असर सब पर पड़ रहा है। चाहे वह किसी भी धर्म या जाति का हो।

अभी भारत की आबादी 1.39 अरब है। बढ़ती जनससंख्या के चलते कृषि योग्य भूमि पर भी अतिक्रमण हो रहा है। खेती योग्य जमीन घट रही है, खाने वाले लोग बढ़ रहे हैं। ऐसे में सभी के लिए कृषि से भोजन उपलब्ध कराना एक नई चुनौती होगी। यह विडंबना ही है कि आजादी के बाद देश खाद्यान्न के मामले में पूरी तरह आत्मनिर्भर नहीं हो पाया है, बल्कि आज कृषि भूमि के अन्य उपयोगों में तेजी से परिवर्तन हो रहा है, किसान कृषि से दूर हो रहे हैं, जिससे भारत में खाद्य सुरक्षा के लिए खतरा बढ़ सकता है। कृषि भूमि का ह्रास भारत के सामाजिक-आर्थिक ताने-बाने को भी प्रभावित कर रहा है। हालांकि, इस दौरान सरकार द्वारा बंजर भूमि को कृषि योग्य भूमि में बदलने में कुछ सफलता मिली है, बावजूद इसके, यह भी एक तथ्य है कि हमारे देश में खेती योग्य भूमि साल-दर-साल घट रही है।

'वेस्टलैंड एटलस 2019' के मुताबिक, पंजाब जैसे कृषिप्रधान राज्य में चौदह हजार हेक्टेयर और पश्चिम बंगाल में बासठ हजार हेक्टेयर खेती योग्य भूमि घट गई है। वहीं, सबसे अधिक आबादी वाले राज्य उत्तर प्रदेश में यह आंकड़ा सबसे अधिक खतरनाक लग सकता है, जहां हर साल विकास कार्यों पर अड़तालीस हजार हेक्टेयर कृषि भूमि घटती जा रही है। गौरतलब है कि 1992 में ग्रामीण परिवारों के पास 11.7 करोड़ हेक्टेयर भूमि थी, जो 2013 तक घट कर केवल 9.2 करोड़ हेक्टेयर रह गई। जाहिर है कि महज दो दशक में 2.2 करोड़ हेक्टेयर भूमि ग्रामीण परिवारों के हाथ से निकल गई। अगर यही सिलसिला जारी रहा तो कहा जा रहा है कि अगले साल तक भारत में खेती का रकबा आठ करोड़ हेक्टेयर ही रह जाएगा।

यह ठीक है कि जनसंख्या नियंत्रण के नाम पर कई योजनाएं बनीं, मगर वे सफल नहीं हो सकीं। जनसंख्या के लिए एक राष्ट्रीय नीति बहुत जरूरी है। बेतहाशा बढ़ती जनसंख्या देश के विकास को प्रभावित कर रही है। बड़ी जनसंख्या तक योजनाओं के लाभों का समान रूप से वितरण संभव नहीं हो पाता, जिसकी वजह से हम गरीबी और बेरोजगारी जैसी समस्याओं से दशकों बाद भी उबर नहीं सके हैं। जाहिर है कि अगर आबादी बढ़ती है, तो गरीबों की संख्या में वृद्धि होना स्वाभाविक। वैशविक भुखमरी सूचकांक 2022 की रिपोर्ट के मुताबिक, भारत में 16.3 फीसद आबादी कुपोषित है। पांच साल से कम उम्र के 35.5 प्रतिशत बच्चे अविकसित हैं। भारत में 3.3 प्रतिशत बच्चों की पांच साल की उम्र से पहले ही मौत हो जाती है। खाद्य एवं कृषि संगठन (एफएओ) की 'द स्टेट आफ फूड सिक्युरिटी एंड न्यूट्रिशन इन द वर्ल्ड' रिपोर्ट के अनुसार दुनिया भर में अस्सी करोड़ से ज्यादा लोग भुखमरी से जूझ रहे हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो दुनिया का हर दसवां शख्स भूखा है। इतना ही नहीं, अब भी दुनिया में स्वस्थ आहार 310 करोड़ लोगों की पहुंच से बाहर है। साफ है कि दुनिया भर में तमाम कार्यक्रमों और संयुक्त राष्ट्र की कोशिशों के बावजूद खाद्य असमानता और कुपोषण को अभी तक खत्म नहीं किया जा सका है। खाद्य और कृषि संगठन के मुताबिक, इसका एक बड़ा कारण देशों के बीच संघर्ष, जलवायु परिवर्तन और आर्थिक मंदी है। कोरोना महामारी ने इस अंतर को और बढ़ाया है।

बढ़ती आबादी की वजह से ही दुनिया भर में तेल, प्राकृतिक गैस, कोयला आदि ऊर्जा संसाधनों पर दबाव बढ़ गया है, जो भविष्य के लिए बड़े खतरे का संकेत है। भले हम विकास का दम भरते रहें, पर सच यह है कि दुनिया भर में भुखमरी का गंभीर संकट मंडरा रहा है। अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन का कहना है कि खाद्य समस्या का मुख्य कारण सिर्फ खाद्य पदार्थों का अभाव नहीं, बल्कि लोगों की क्रयशक्ति में कमी है। वहीं दूसरी तरफ, एक आकलन के अनुसार पूरी दुनिया में तीस फीसद अनाज बर्बाद हो जाता है। किसान भी आबादी के अनुपात में अनाज का उत्पादन नहीं कर पा रहा है। महंगाई बढ़ने का यह एक बड़ा कारण है। ऐसे में दुनिया की बड़ी आबादी को भुखमरी से बाहर निकालने के लिए सामूहिक प्रयास की जरूरत है।

जनसंख्या नियंत्रण और खाद्य उत्पादन में वृद्धि को लेकर विचार करने की आवश्यकता केवल भारत नहीं, संपूर्ण विश्व को है। इन दोनों समस्याओं के समाधान के लिए विश्व स्तर पर अभिनव प्रयास जारी हैं। भारत विश्व के उन देशों में है जहां खाद्यान्न की प्रति व्यक्ति उपज बेहद कम है। यहां अमीर वर्ग मध्यवर्ती किसान और व्यापारी ही पर्याप्त और उपयुक्त भोजन प्राप्त कर पाते हैं। शेष ग्रामीण, मजदूरों, लघु कृषकों, आदिवासियों मध्यवर्गीय लोगों के समक्ष अन्न की समस्या बढ़ती जा रही है। जमीन की उर्वरता बढ़ाने के लिए पशुपालन और अनाज के स्थान पर साग-सब्जी का उत्पादन तथा सेवन ऐसा उपाय है, जिसके सहारे समाधान बहुत हद तक संभव है। सरकार द्वारा परिवार नियोजन और खाद्यान्न उत्पादन के लिए कार्यक्रम क्रियान्वित किया जाना चाहिए।

राष्ट्रीय सहारा

Date:05-12-22

छोटे शहरों की चिंता ज्यादा जरूरी है

डॉ. भीम सिंह भवेश

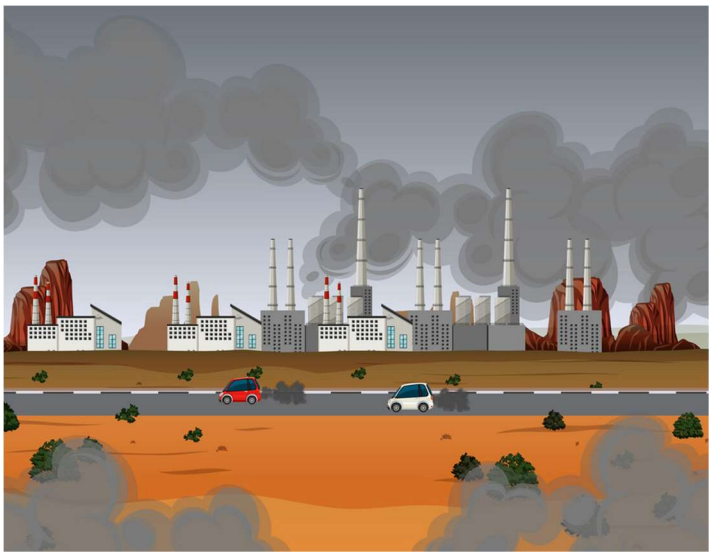

पर्यावरण प्रदूषण आज गंभीर वैश्विक समस्या का रूप अख्तियार कर चुका है। खासकर छोटे शहरों में प्रदूषण की चाल-ढाल अब डराने लगी है। 'कोढ़ में खाज' यह कि इन द्वितीयक और तृतीयक शहरों के गैस चैंबर बनने को लेकर किसी को रत्ती भर भी चिंता नहीं हो रही है। कहीं से कोई आवाज नहीं उठ रही है,जबकि आंकड़े चीख-चीखकर भयावहता का प्रदर्शन कर रहे हैं। इसकी वजह से प्रति वर्ष 90 लाख लोग असमय काल कवलित हो रहे हैं। इनमें भारत से करीब 24 लाख होते हैं। यदि इस तरफ सचेत नहीं हुए तो दिन दूर नहीं जब भौतिक उपलब्धियों की होड़ में हम एक बीमार देश की संरचना करना शुरू कर देंगे।

प्रत्येक वर्ष सर्दियों में पर्यावरण और स्वास्थ्य के हालात को देखते हुए, सिंधु-गंगा के मैदानी इलाकों (इंडो-गैंगेटिक प्लेन) का मानिचत्र लाल रंग से रंग जाता है, जिसका कारण सर्दी के मौसम में वायु प्रदूषण खतरनाक स्तर पर पहुंचना है। आमतौर पर दिल्ली सबसे ज्यादा खबरों में रहती है और इस समस्या का केंद्र भी यही होती है, लेकिन यह कहानी अकेले दिल्ली की नहीं है। यह उत्तर भारत के विस्तृत भू-भाग में रहने वाले लोगों को जहरीली हवा के दुष्प्रभावों से होने वाले खतरों के बारे में है। सिंधु-गंगा के मैदानी इलाकों में सिरसा, जींद, करनाल, भटिंडा, मेरठ, लखनऊ, वाराणसी, पटना, गया और पश्चिम बंगाल के शहर हैं (देखें, खतरे का बढ़ता दायरा,)। इन शहरों में पीएम 2.5 के वार्षिक औसत स्तर और 24 घंटे के अधिकतम औसत का त्वरित मूल्यांकन दर्शाता है कि दिल्ली की तुलना में पीएम 2.5 के काफी कम वार्षिक

औसत स्तर वाले शहरी इलाकों में रोजाना ज्यादा धुंध होने की संभावना है। यह धुंध की घटनाओं को रोकने और वायु प्रदूषण को कम करने की जरूरत को दर्शाता है। वायु प्रदूषण की खतरनाक और भ्रामक प्रकृति भारत के अन्य क्षेत्रों में भी दिखाई देती है। कुछ ऐसा ही हाल बिहार के कई जिलों का है जहां वायु गुणवत्ता सूचकांक (एक्यूआई) देश के सर्वाधिक खतरनाक शहरों के समतुल्य पहुंच गया है। 26 नवम्बर, 2022 को बिहार एक्यूआई रिपोर्ट के मुताबिक तीन जिलों दरभंगा (421), सिवान (401) और पूर्णिया (381) का 'खतरनाक' जबकि बेतिया, भागलपुर, बिहार शरीफ, बक्सर, छपरा, कटिहार, मोतिहारी, मुजफ्फरपुर, सहरसा एवं समस्तीपुर का 'बहुत खराब' रहा। विदित हो कि एक्यूआई रिमार्क 0 से 50 'अच्छा', 51 से 100 'ठीक है', 101 से 2000 'अच्छा नहीं', 201 से 300 'खराब', 301 से 400 'बहुत खराब' और 401 से 500 तक का वायु गुणवत्ता सूचकांक 'खतरनाक' श्रेणी का रिमार्क है। वैज्ञानिकों का मानना है कि अगले 50 वर्षों तक प्रदूषण की यही गति बनी रही तो पृथ्वी का विनाश हो सकता है। विकास पदार्थों की बढ़ती मात्रा, जनसंख्या वृद्धि, वृक्षों की कटाई, कृषि एवं औद्योगिक पदार्थों के निपटान के विकल्पों की कमी, शहरीकरण, खनन और बदलती जीवन शैली प्रदूषण को खाद-पानी दे रहे हैं। तेजी से बढ़ते रेफ्रिजिरेटर और एयर कंडीशनर के उपयोग के कारण फ्रियोन और क्लोरो फ्लोरो कार्बन (सीएफसी) गैस भी अपना कुप्रभाव तेजी से बढ़ा रही हैं। प्रदूषण की समस्या से आज समूचा विश्व चिंतित है। इस पर नियंत्रण के प्रयासों की चर्चा जोर-शोर से हो रही है, परंतु तेजी से बढ़ते प्रदूषण को नियंत्रित करने के निमित्त सरकारी और सामाजिक प्रयास नाकाफी सिद्ध हुए हैं। लिहाजा अब सरकारों को भूमि, जल, वन, वायु इत्यादि के अनियंत्रित दोहन पर रोक लगानी चाहिए ताकि पर्यावरण बच सके। उद्योगों द्वारा फैलाए जाने वाले प्रदूषण, जनसंख्या वृद्धि, गंदी बस्तियों के विस्तार आदि को रोकना होगा। वृक्षारोपण के लिए लोगों में जागरूकता पैदा करनी होगी। फैक्टरियों से निकलने वाले धुएं को रोकने के लिए चिमनियों में ऐसे यंत्र लगाए जाने चाहिए जिससे घातक गैसें तथा धुएं को वहीं कार्बन के रूप में रोक लिया जाए। खतरनाक रसायनों को नदियों में डालने की बजाय ऐसे तरीके से नष्ट किया जाए जिससे नदियों का पानी प्रदूषित न होने पाए। वाहनों से निकलने वाली गैसों पर नियंत्रण रखने के लिए उनमें फिल्टर का उपयोग अनिवार्य कर दिया जाए। आण्विक विस्फोटों पर भी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अंकुश लगा दिया जाना चाहिए।

सौर ऊर्जा जनसाधारण के लिए सुलभ कराई जाए जिससे प्रदूषण कम किया जा सके। मानव व पशु संख्या पर प्रभावी नियंत्रण लगाया जाना चाहिए। मूलभूत आर्थिक क्रियाकलाप की विविधता के लिए प्राकृतिक सजीव संसाधनों के प्रबंध को उच्च प्राथमिकता देनी होगी, लेकिन भूमि व जल प्रबंधन पर ध्यान दिए बगैर इसकी व्यवस्था करना नुकसानदेह होगा। व्यावसायिक इकाइयां प्रदूषण रोकने के लिए निर्देशित वर्जनाओं का पालन करें। भले ही ये कदम खर्चीले या दंडात्मक ही क्यों न हों। क्योंकि जीवन से अधिक व्यवसाय महत्वपुर्ण नहीं है। जीवन बचेगा तो व्यवसाय होगा। प्रदूषण रोकने के लिए हर स्तर पर जागरूकता एवं इस क्षेत्र में बेहतर कार्य करने वाले व्यक्तियों और संस्थाओं को प्रोत्साहित भी किया जाए।

Live हिन्दुस्तान.com

Date:05-12-22

कैसे मिलेगा डाटा क्रांति का पूरा फायदा

हरजिंदर, (वरिष्ठ पत्रकार)

तीन साल पहले हार्वर्ड विश्वविद्यालय की प्रोफेसर शुशाना जुबॉफ ने एक किताब लिखी- द एज ऑफ सर्विलांस कैपिटलिज्म। इस किताब में उन्होंने सूचना युग के पूंजीवाद की एक नई व्याख्या दी थी। इसके पहले की व्याख्याएं बहुत सारी हैं, लेकिन शुशाना ने अपनी बात जिस व्याख्या से शुरू की, वह थी कार्ल मार्क्स की व्याख्या। मार्क्स मानते थे कि पूंजीवाद मानव श्रम का शोषण कर उसे संपत्ति में बदल देता है। शुशाना ने इसी को आधार बनाते हुए आधुनिक पूंजीवाद को अलग तरह से परिभाषित किया। इस किताब में वह कहती हैं कि संचार युग का पूंजीवाद लोगों के डाटा और उनकी निजता का शोषण करके उसे संपत्ति में बदलता है।

यह वह परिभाषा है, जिससे हम गूगल और फेसबुक जैसी कंपनियों को बहुत आसानी से समझ सकते हैं। इन कंपनियों ने न तो कोई बहुत बड़ी फैक्टरियां लगाईं और न ही भारी संख्या में मजदूर या अन्य कर्मचारी रखे। न कच्चा माल खरीदा गया, न उत्पादन हुआ और न ही बाजार में बेचने के लिए कोई उत्पाद तैयार हुआ। मगर बहुत ही कम समय में उन्होंने इतनी संपत्ति अर्जित कर ली कि आज उनकी गिनती दुनिया की बड़ी कंपनियों में होती है। हमारे कंप्यूटरों और मोबाइल फोन से हर क्षण निकलने वाला डाटा उनके लिए इतनी बड़ी सोने की खान साबित हुआ कि सचमुच में सोने का खनन करने वाली कंपनियों की चमक भी उनके सामने फीकी पड़ गई।

हालांकि, इस किताब से भी दो दशक पहले दुनिया को यह बात समझ में आने लगी थी कि डाटा ही भविष्य की पूंजी है और भविष्य की कारोबारी इमारतें इसी नींव पर खड़ी की जाएंगी। वे खड़ी भी हुईं। वह भी मजबूती से। गूगल उसी दौर की उपज है, फेसबुक हालांकि कुछ बाद में आया। उसके बाद से तो पूरी दुनिया में डाटा आधारित सफल कारोबारों और कारोबारियों की कतार ही बंध गई। इसके साथ ही डाटा की मिल्कियत और निजता के अधिकार को लेकर कई तरह के विमर्श भी तकरीबन हर जगह चल रहे हैं।

मगर दो दशक के बाद भी भारत में अभी तक हम यह तय नहीं कर सकें कि हमें अपने डाटा का क्या करना है? देश के तमाम नीति नियामक पिछले पांच साल से इसी कवायद में व्यस्त हैं कि किसी तरह निजी डाटा संरक्षण विधेयक को अंतिम रूप दिया जाए, लेकिन इसमें कामयाबी नहीं हासिल हो रही। इसका जो पहला मसौदा बना, उसमें राष्ट्रवाद का

तर्क देते हुए यह व्यवस्था की गई थी कि सभी को देश के लोगों का डाटा देश के सर्वरों में ही रखना होगा और उसे बाहर जाने की इजाजत नहीं दी जा सकती। मगर बाद में समझ आया कि इंटरनेट के जरिये पूरी दुनिया जिस तरह से आपस में जुड़ चुकी है, उसमें व्यावहारिक रूप से यह बहुत संभव नहीं है। अब इस विधेयक का जो नया मसौदा पेश किया गया है, उसमें से इस अनिवार्यता को विदा कर दिया गया है। मगर नए मसौदे में बहुत सारे पेच ऐसे हैं, जिनसे न तो उद्योग जगत खुश है और न ही नागरिक अधिकार संगठन। एक की उम्मीदों पर यह अभी खरा नहीं उतर रहा और दूसरे को लग रहा है कि लोगों की निजता को बचाने की संवेदनशीलता इसमें नदारद है। अभी चंद रोज पहले ही जारी हुए इस मसौदे की खामियों पर इतना कुछ कहा और लिखा जा चुका है कि उसे जोड़कर कई पोथे तैयार हो सकते हैं।

यह सब तब हो रहा है, जब भारत को दुनिया में डाटा की सबसे उपजाऊ भूमि कहा जा रहा है। चीन के बाद भारत दुनिया का दूसरा ऐसा देश है, जहां मोबाइल फोन की संख्या एक अरब को पार कर चुकी है। इसमें एक बड़ी संख्या स्मार्टफोन की है। स्मार्टफोन एप डाउनलोड के मामले में भी भारत दुनिया में दूसरे नंबर पर है। गूगल, फेसबुक, यू-ट्यूब, इंस्टाग्राम, लिंक्डइन, ट्रू-कॉलर जैसे एप के लिए भारत दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा बाजार है। भारत के दुनिया की तीसरी बड़ी अर्थव्यवस्था बनने को लेकर अभी बहुत सारी किंतु-परंतु हैं, लेकिन सोशल मीडिया की सदस्यता के मामले में यह बहुत पहले दूसरे नंबर पर पहुँच चुका है।

जाहिर है, जिन देशों में इस समय सबसे ज्यादा डाटा तैयार हो रहा है, उनमें भारत बहुत आगे पहुँच चुका है। मगर सच यह है कि यह डाटा अभी तक सिर्फ कच्चा माल है, जो भारत से बाहर की कंपनियों के हवाले हो रहा है। डाटा अगर नए दौर की पूंजी है, तो यह पूंजी हमारे पास पर्याप्त मात्रा में मौजूद है, लेकिन इससे जो पूंजीवाद मजबूत हो रहा है, उसकी इमारत फिलहाल भारत के बाहर बुलंद है।

ठीक यहीं पर डाटा संरक्षण का कानून हमारे लिए महत्वपूर्ण हो जाता है। पांच साल पहले जब इसके लिए बीएन श्रीकृष्णा की अध्यक्षता में एक विशेषज्ञ समिति का गठन हुआ था, तो कई उम्मीदें बांधी गई थीं। उद्योग जगत को उम्मीद थी कि इससे देसी डाटा पूंजीवाद जड़ें पकड़ेगा, जबकि नागरिकों को उम्मीद थी कि उनकी संवेदनशील जानकारियों का दोहन नहीं होगा। यह भी उम्मीद की जा रही थी कि जैसे यूरोपीय संघ ने निजता के अधिकार को मौलिक अधिकार बना दिया है, कुछ वैसे ही प्रावधान यहां भी किए जाएंगे। मगर विधेयक के पहले मसौदे में ऐसा कुछ नहीं दिखा। जब इसे लोकसभा में रखा गया, तो यह वहां से संयुक्त संसदीय समिति के पास पहंुच गया। समिति ने इसमें 81 संशोधन सुझाए और 12 अन्य सिफारिशें की। नतीजा यह हुआ कि सरकार ने विधेयक को ही वापस ले लिया। अब जो नया मसौदा तैयार हुआ है, वह भी किसी को संतुष्ट करता नहीं दिख रहा। जो काम कई साल पहले हो जाना चाहिए था, वह अब भी आम सहमति लायक मसौदे का इंतजार कर रहा है।

विश्व उद्योग जगत की एक के बाद एक कई क्रांतियों में हम पिछड़े हैं। पहली और दूसरी औद्योगिक क्रांति के समय भारत गुलाम था, इसलिए पिछड़ जाने पर कोई आश्चर्य नहीं। मगर इसके बाद हम उस तीसरी औद्योगिक क्रांति में भी पीछे रह गए, जब दुनिया ने सेमीकंडक्टर से कंप्यूटर तक का सफर तय किया। इसके बाद हुई संचार क्रांति में हमने एक छोटी भूमिका जरूर निभाई, लेकिन चीन या कोरिया की तरह हम अगली पांत में कभी नहीं पहुँच पाए। ऐसे में, थोड़ा सा और चूके, तो हम डाटा क्रांति का पूरा फायदा उठाने में भी नाकाम रहेंगे।

Date:05-12-22

घटती आर्थिक असमानता से बावजूद सता रही गरीबी

हिमांशु, (एसोसिएट प्रोफेसर, जेएनयू)

अभी यह बहस गरम है कि पिछले एक दशक में गरीबी की क्या स्थिति रही? यह एक स्वाभाविक जिज्ञासा है, विशेषकर यह देखते हुए कि इस दशक में नीतिगत और प्राकृतिक, दोनों घटनाएं घटित हुईं। साल 2014 और 2015 सूखे की भेंट चढ़ गए, फिर नोटबंदी हुई, उसके बाद जीएसटी लागू किया गया और अंत में कोरोना-संक्रमण; अर्थव्यवस्था पर इन सबका स्पष्ट प्रभाव पड़ा और औसत विकास दर पिछले तीन दशकों में सबसे कम हो गई। इसमें आखिर क्या नफा और कितना नुकसान हुआ? जहां तक गरीबी उन्मूलन का सवाल है, तो इस मोर्चे पर पिछले दशक में हमें कामयाबी नहीं मिली, पर आर्थिक विषमता घटाने में हम जरूर सफल हुए हैं।

राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय द्वारा जारी उपभोग व्यय का आंकड़ा असमानता मापने का आधार रहा है। मगर 2011-12 के बाद उपभोग सर्वेक्षण न होने के कारण इस बाबत ठीक-ठीक बता पाना मुश्किल है। 2017-18 का पिछला सर्वेक्षण सरकार ने बिना कोई ठोस वजह बताए खारिज कर दिया था। मगर इसकी लीक हुई सूचनाएं बता रही थीं कि 2011-12 और 2017-18 के दरम्यान देश में गरीबी बढ़ी है। आवधिक श्रम बल सर्वेक्षण (पीएलएफएस) के आंकड़ों ने 2017-18 के बाद उपभोग व्यय व श्रमिक आय में गिरावट की बात कही थी। खपत सर्वेक्षण के आंकड़ों से भी पता चला था कि नाममात्र ही सही, लेकिन असमानता कम हुई है। असमानता को मापने का एक मापक गिनी भी है। गांवों में 2011-12 की 28.7 की तुलना में 2017-18 में गिनी गुणांक 25.8 था, जबकि शहरों में इसी अवधि के दौरान यह गुणांक 36.7 से घटकर 32.9 हो गया। पूंजीगत असमानता को आंकने वाले अखिल भारतीय ऋण और निवेश सर्वेक्षण (एआईडीआईएस) ने भी इसकी पुष्टि की है। उसने भले ही खपत व पीएलएफएस सर्वेक्षणों की तरह तेज गिरावट नहीं दिखाई, लेकिन यह बताया कि 2019 में संपत्ति में असमानता नहीं बढ़ी है या 2012 के स्तर पर स्थिर है। हां, कुछ निजी सर्वे बता रहे हैं कि असमानता बढ़ी है, लेकिन इनमें वृद्धि बहुत मामूली जान पड़ती है।

इससे यही समझ आता है कि इस अवधि में असमानता घटी है, जबकि गरीबी बढ़ने के पर्याप्त सुबूत हैं। हालांकि, ऐसा क्यों हुआ, इस पहेली की कोई स्पष्ट व्याख्या नहीं है। ऐसा नहीं है कि अमीरों की आमदनी छिटककर गरीबों के हिस्से में जाने या गरीबों की आमदनी अपेक्षाकृत तेजी से बढ़ने के कारण आर्थिक असमानता घटी है, बल्कि इसकी वजह मध्यवर्ग और संपन्न तबके की आय में आई गिरावट है। अर्थव्यवस्था में आई सुस्ती भी इसी की तस्दीक करती है, जिसने न केवल गरीबों को प्रभावित किया है, बल्कि अमीरों की आय के तमाम पहलुओं पर भी गहरा असर डाला है। पीएलएफएस के आंकड़े साफ बता रहे हैं कि नियमित श्रमिकों की कमाई दिहाड़ी मजदूरों की तुलना में तेजी से कम हुई है।

संभावना इस बात की भी है कि आर्थिक मुश्किलों से टकराने के मामले में गरीब कहीं अधिक बेहतर स्थिति में थे, क्योंकि पिछले दो दशकों में भारत में सामाजिक सुरक्षा का आधार व्यापक हुआ है। दरअसल, राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा

अधिनियम के लागू होने और महामारी के दौरान दिए जाने वाले मुफ्त राशन के बाद जन-वितरण प्रणाली का भी विस्तार हुआ है। यहां तक कि ग्रामीण रोजगार गारंटी जैसी योजनाओं ने भी गरीबों को मुश्किल वक्त से पार पाने में मदद की है। कहा जा सकता है कि कल्याणकारी उपायों से बेशक गरीबों को बुनियादी सुरक्षा मिली,पर मध्यवर्ग की आय कम होने से घटी विषमता आर्थिक विकास की स्थिरता पर सवाल उठाती है।

ऐसे तथ्य भी हैं, जो बताते हैं कि गैर-जरूरी खर्च में कमी के कारण अर्थव्यवस्था में मांग की स्थिति कमजोर हुई है। यह न सिर्फ आर्थिक सुस्ती की एक वजह बनी, बल्कि इसने विकास के फिर से तेज होने की राह भी कमजोर की। यदि स्थिति यही रही, तो व्यापक आर्थिक सुधार की दिशा में हमें मुश्किलों का सामना करना पड़ सकता है। गरीबों के लिए सामाजिक सुरक्षा का जाल जरूर मजबूत होना चाहिए, पर भारत में आर्थिक सुधार की कोई भी कवायद विशाल मध्यमवर्ग की क्रय-शक्ति को बेहतर बनाए बिना अधूरी साबित होगी।